संस्कृत साहित्य में नारी के विविध स्वरूप

*डॉ. यशस्पति झा

किसी राष्ट्र की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण तथा विकास में नारी का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है यही कारण है कि किसी भी युग अथवा राष्ट्र से सामाजिक व्यवस्था एवं तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण का वास्तविक मूल्यांकन नारियों का ही किया जा सकता है। स्थिति एवं उनके विषय में प्रचलित धारणाओं के आधार पर नारी त्याग, दया, ममता, करुणा तथा सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। अर्थात् स्त्री संसार रूपी यज्ञ की संचालिका है। सृष्टि की निर्मात्री होने के कारण उनके योगदान के बिना समाज समूह नहीं हो सकता चाहे वह पश्चिम की हो अथवा पूर्व की। नारी त्याग, दया, कोमलता, करुणा, सहनशीलता आदि गुणों को अपने में समेटे हुए समाज की मर्यादा को अक्षुण्ण रखती है, समाज में सदा नारी का सम्मानित स्थान रहा है। क्योंकि नारी ने अपने सद्व्यवहार, त्याग, आचरण और निर्माण शक्ति से परिवार एवं समाज को प्रभावित कर सदा सन्मार्ग दिखलाया है। नारी सदा से मनुष्य के लिए पथप्रदर्शिका रही है।

भारतीय इतिहास में नारी सभ्यता की शुरुआत में परिवार का केन्द्र बिंदु थी। परिवार मातृ सत्तात्मक थे। आर्यों की सभ्यता और संस्कृति से प्रारम्भिक काल में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। ऋग्वेद कालीन स्त्रियाँ सर्वोच्च शिक्षा अर्थात् ब्रह्मज्ञान प्राप्त करती थी। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। वैदिक काल में परिवार के सभी कार्यों और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। नारियाँ शिक्षा ग्रहण करने के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करती थीं। वेदों में अनेक स्थलों पर रोमाला, छोपाल, सूर्या, विलोनी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी आदि विदुषियों के नाम प्राप्त होते हैं। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की प्रतिष्ठा बनी रही और उन्हें सृष्टि सर्जक ब्रह्मा कहा जाता वैदिक साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया तथा विभिन्न स्थानों पर उसके महत्त्व को वर्णित किया गया है।

वैदिककालीन साहित्य में नारी के स्वरूप का वर्णन कन्यारूप, पत्नी रूप एवं विधवा रूप में मिलता है। कन्यारूप: पुत्री को पुत्र की भाँति समान रक्षण और प्रेम के साथ पालित किया जाता था तथा उनके लिए यज्ञ-याग सम्पन्न करने का विधान था

पत्नी रूप धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने के लिए पत्नी का होना आवश्यक है, क्योंकि समस्त गृहा संस्कार पति-पत्नी की सहायता से सम्पन्न होता है। गृह्यसूत्रों में इसी कारण पत्नी किसी भी स्थान पर पति की निजी सम्पत्ति अथवा दासी के रूप में वर्णित नहीं हुई है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र के अनुसार "पति और पत्नी अविभक्त इकाई के समान, जीवन के समस्त भागों के लिए निर्मित हैं, चाहे वह धार्मिक हो अथवा आध्यात्मिक " विधवा रूप नारी का विधवा होना वैदिक कालीन समाज के लिए अभिशाप न था। वैदिककालीन समाज में विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। बोधायन और वशिष्ठ धर्मसूत्रों के अनुसार जिस स्त्री की सगाई के उपरान्त पति मृत्यु को प्राप्त हो गया हो अथवा पाणिग्रहण संस्कार तो सम्पन्न हो गया हो, किन्तु संसर्ग न हुआ हो, उन्हें पूर्णरूपेण पुनर्विवाह करने का अधिकार हैं समाज और राष्ट्र को उन्नत बनाने में परिवार की महती भूमिका है। परिवार जितना अधिक सुगठित, सुदृढ़ और शान्तिमय होगा, राष्ट्र उतना ही उन्नत एवं विकसित होगा। परिवारों की रचना के मूल में पति-पत्नी का पारस्परिक सम्बन्ध मुख्य है। पारिवारिक व्यवस्था, दायित्वों एवं याज्ञिक कृत्यों की पूर्ति में नारी की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी नारी ने पत्नी, माता, पुत्रवधू, भगिनी, दुहिता आदि रूप में समाज एवं राष्ट्र की उन्नति में अपना योगदान दिया है।

पत्नीरूप : पत्नी को पति की आत्मा का अर्द्ध भाग माना गया है। याज्ञिक कार्यों में भी पत्नी की उपस्थिति अपेक्षित है "अयज्ञो वा एष योह्मपत्नीकः " अर्थात् यज्ञ में साथ बैठने वाली स्त्री को पत्नी कहा गया है इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में माना है

वाङ्मय में नारी चित्रण क कृत्यों में नारी

जहाँ पत्नी की प्रति उसे आधार गृह माना जाता है। यहीं पत्नी से गृह होती है। प्रतिष्ठा का आधार होने के कारण ही नारी पनी कही गई है। सम्वेद में जादरम्' अर्थात् पत्नी को पर है इस प्रकार का विवेचन दृष्टिगोचर होता है। तैत्तरीय ब्राह्मण में पति-पत्नी को एक दूसरे से युक्त हो जाने तथा हल बैलों की भाँति यज्ञ में जुट जाने का निर्देश दिया गया है।

"पत्री पत्या सुकून गच्छाम यज्ञस्य युक्त थुर्यावभूताम्' संजानानी वजहनाभरातीः । दिवि ज्योरजरमार केताम् प्रेस के साथ पालित पत्री यज्ञ में पति के साथ भाग लेती है धार्मिक कृत्यों की भाँति उनमे उत्पा फल के भोग में पत्र पति के समान ही अधिकारिणो समझी जाती थी। पुरुष अकेले स्वर्ग के भोग की भी आकांक्षा नहीं कर सकता इस प्रकार ही रूप में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है मातृरूप में नारी सर्वदा पूजनीय रही है। माता के लिए जननी शब्द का प्रयोग किया जाता है। जननी शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि नारी का जाया रूप पुनः पुत्र को जन्म देने के कारण जननी शब्द से अभिहित है।

"देवाय तेजः समरभरन् महान्

देवा मनुष्यान वषा वो जननी पुनः।। इस प्रकार माता का स्थान बहुत उच्च गरिमा युद्ध एवं महत्वशाली माना गया है। माता कौटुम्बिक जीवन की अटूट कड़ी है। जिसमें परिवार के सभी सदस्य जुड़े होते हैं। माता महता से समाज को सामाजिक व्यावहारिक एवं राजनैतिक ज्ञान प्राप्त कराती है।

परिवार एवं विकसित सम्बन्ध मुख्य है।

पुत्रवधू नारी के इस रूप का पृथक रूप में कोई विशेष वर्णन प्राप्त नहीं होता है, किन्तु उपमाओं के माध्यम से संकेत अवश्य उपलब्ध होते हैं। वैत्तरीय ग्रन्थों में उपमा दी गयी है कि यजमान के शत्रु उसी प्रकार उनकी बात मानेंगे, जिस प्रकार असुर की आज्ञा मानती है उसी प्रकार ऐतरेय ग्रन्थों में कहा गया है कि "यथा सुषा धरानमाना निलीयमाने त्वय्यैवमेव सा सेना भन्यमाना निलीयमानेति' अर्थात् मंत्रोच्चारण करते हुए तृण शत्रु पर फेंक दिया जाये तो वह सेना सहित नि भिन्न हो जाएगा जिस प्रकार ससुर के सामने आते ही पुत्रवधू लज्जित हो जाती है।

भगिनीरूप ऋग्वेद में बहन के लिए स्वसर अथवा स्वसु शब्द का प्रयोग हुआ है। स्वसर शब्द को निरुति सु-अरता अर्थात् अत्यधिक निर्भर के रूप में की रूपरूप एवं स्मार्तानि व श्रीतानि में किये गये यज्ञ क्रमशः गृह्य एवं पाक यज्ञ कहलाते हैं। इन्हीं यज्ञों में स्वो पति के साथ धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन करती है। बिना पत्नी के पुरुष को यज्ञ करने का अधिकार नहीं था क्योंकि सभी याजिक कार्यों में पत्नी की उपस्थिति अपेक्षित थी।

"अयज्ञीयो वा एवं योऽपत्नीकः

पत्नी को पति की आत्मा का अर्द्धभाग माना गया है। पत्नी रूप में नारी की इस भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि समाज में स्त्री तथा पुरुष की अकेले कल्पना ही नहीं की गई थी, ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ नारियाँ होगी वहाँ नर अवश्यम्भावी है जहाँ नर है वहाँ तो नारी आवश्यक है ही अतएव परिवार से लेकर याज्ञिक कृत्यों में नारी की भूमिका महत्त्वपूर्ण व अविस्मरणीय है।

***व्याख्याता**
व्याकरण
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
अलवर (राज.)

सन्दर्भ :

1. आपस्तम्ब धर्मसूत्र : उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा सीरीज, वाराणसी, 1969

2. ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ मार्टिन हॉग, भारतीय पब्लिशिंग हाउस, दिल्लो भाग प्रथम, 1976 भाग द्वितीय 1977
3. चौधायनधर्म सूत्र: उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1972
4. ब्राह्मण ग्रन्थों में नारी डॉ. मंजुला गुप्ता, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2000
5. कालिदास एवं शेक्सपीयर के आलोक में नारी वन्दना वागीश्वरी, क्लासिक पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007
6. महाभारत में नारी भवालकर वनमाला, अभिनव साहित्य प्रकाशन, सागर प्रकाशन साहित्य
7. मनुस्मृति जगदीश लाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1990
8. तैत्तरीय ब्राह्मण ग्रन्थ ए. महादेव शास्त्री एवं एल. श्रीनिवासाचार्य मोतीलाल बनारसीदास, 1985
9. वेदों में मारी द्विवेदी, कपिलदेव, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी, 1986)